मक़ामे शब्बीरी

सैय्यिदुल उलमा के ख़ुतबे (8)

सैय्यिदुल उलमा[ता०स०] की यह तक़रीर मुहर्रम 1372[हि०] में प्रोफ़ेसर सै० मसूद हसन रिज़वी साहब की कोठी, दीन दयाल रोड, लखनऊ में हुई।

हक़ीक़ते अबदी है मक़ामे शब्बीरी
बदलते रहते हैं अन्दाज़े कूफ़ियो शामी

यह इस्लाम के मशहूर मुफ़क्किर शायर डाक्टर इक़बाल का मशहूर शेअ्र है।

हक़ीक़त ये है कि हक़ीक़त होना खुद अबदी होने का ज़िम्मेदार है। हक़ीक़त वक़्त की पैदावार नहीं होती। हक़ीक़त इन्क़ेलाबे रोज़गार नहीं बदलती। हक़ीक़त तबीअतों के रुजहानों के साथ अलग-अलग नहीं होती। ''अगर हक़ इन्सानी चाहतों की पैरवी करने लगे तो ज़मीन और आसमान और सब चीज़ें ऊपर-नीचे हो जाएं''।

हक़ एक सीधी लकीर होता है और सीधी लकीर दो नुक़्तों के बीच एक ही हो सकती है। बातिल इधर-उधर के निशान होते हैं जो बहुत से हो सकते हैं।

हक़ अल्लाह तआला के बेहतरीन नामों में से है। आप कहते हैं ''हक़ सुब्हानहू व तआला'' वह हक़ इसी लिए है कि साबित है इधर-उधर नहीं होता।

मक़ामे शब्बीरी भी हक़ीक़ते अबदी इसी लिए है। बदल सकता है वह शख़्स कि जो जज़्बात का पाबन्द हो, वक़्ती सियासत अपना चोला बहुत जल्दी-जल्दी बदल सकती है मगर वह ज़ात जो मक़ामे ताअत में ऐने हक़ बन गई हो ऐसे इन्सान में बदलाव नहीं हो सकता।

हक़ बाँटा नहीं जा सकता और फिर न बढ़ाये जाने वाली चीज़ है। इसलिए इसमें ज़र्रा बराबर भी बदलाव मुमकिन नहीं है। अगरचे शायर ने शेअर की ज़रूरत से सिर्फ़ ''अबदी'' कहा है मगर हक़ीक़त में वह अज़ली भी है। मक़ामे शब्बीरी अज़ली और अबदी दोनों हैं। इसलिए कि वह मुजस्सम दीन है और अल्लाह का दीन अज़ल से एक है और अबद तक एक ही रहेगा। ''इन्नद्दीना इन्दल्लाहिल इस्लाम'' यह दीन नाम है सिर्फ़ हक़ीक़ी माबूद के सामने सर झुकाने का, आदम[अ०], नूह[अ०], इब्राहीम[अ०], मूसा[अ०], ईसा[अ०] और दूसरे सभी नबी[अ०] सब इसी की तालीम देते थे। ये और बात है कि लोगों की समझ के हिसाब से इसके पैमाने में बदलाव होता गया।

जैसे एक इल्म हासिल करने वाला बच्चा स्कूल में दाख़िल हो, अरबी, अंग्रेज़ी जिस तालीम में जाए पहले दर्जे से आख़री दर्जे तक उसका इरादा असल में एक ही है। और आख़री दर्जे की तालीम उसे अचानक दी जाए तो बच्चे का ज़हन कहाँ क़ुबूल कर सकता है। इसलिए हर दर्जे का कोर्स अलग-अलग है मगर वह अलग-अलग और टकराता नहीं है। इसी तरह पिछले नबियों की तालीमात हैं और उनका आख़री सबक़ हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स०] की तालीम है जो इस्लाम के नाम से सामने आयी। ''मक़ामे शब्बीरी'' भी बस यही था। हक़ीक़ी माबूद से हटकर किसी दूसरे के सामने सर झुकाने से इन्कार।

तागूते बातिल (सरकश) इन्सान की पैदाईश के पहले ही दिन से हर ज़माने में हक़ को दबाने की कोशिश करता रहा। अगर माद्दी ताक़त के मुक़ाबले में हक़ दबा दिया गया होता तो आज दुनिया में हक़ का वजूद न होता। अगर नबी मुख़ालेफ़तों की सख़्ती से घबराकर चुप हो जाया करते तो आज दुनिया में अच्छी बातें हमारे सामने नहीं होतीं।

हक़ का पैग़ाम पहुँचाने का रास्ता हमेशा काँटों भरा रहा। मगर हक़ वालों ने कभी हार नहीं मानी। न

नमरूद के सामने इब्राहीम[अ०] ने सर झुकाया, न फ़िरऔन के सामने मूसा[अ०] ने और न अबूजहल के सामने हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स०] ने। फिर हुसैन[अ०] यज़ीद के सामने सर क्यों झुकाते?

एक परेशानी वाला रास्ता ऐसा हो जिस पर अभी तक किसी ने जाने की हिम्मत नहीं की तो उस पर चलने का इरादा करना भी मुश्किल होता है लेकिन अगर कुछ राह चलने वालों के निशान मौजूद हों तो हिम्मत बढ़ती है।

इतनी मिसालें आँखों के सामने आने के बाद भी तो आज हक़ के रास्ते पर चलने में हमारे क़दम थर्रा जाते हैं। कितने ही हैं जो ज़रा सख़्ती से क़दम उठाकर सही रास्ते से हट जाते हैं। हालांकि हमारे सामने पूरी तारीख़ है जिसे हमारे बुज़ुर्गों ने पसीने और आँसू और ख़ून से तैयार किया है फिर भी तो हमारे पाँव उखड़ जाते हैं। अगर ये मिसालें हमारे सामने न होतीं तो कौन होता जो हक़ पर बाक़ी रहे?

याद रखिये कि दुनिया में जो कभी इन्साफ़, मसावात और बराबरी, इन्सानी हुक़ूक़ या ईसार वग़ैरा की आवाज़ें सुनने में आ जाती हैं। यह एहसान है सिर्फ़ उन्हीं हक़ की दावत देने वालों का। वरना माद्दियत का तो फ़लसफ़ा यह है कि इस दुनिया का निज़ाम "तनाज़ो लिलबक़ा" (बाक़ी रहने के लिए मुक़ाबला करना) की बुनियाद पर है। बड़ा पौधा छोटे को खा जाता है। बड़ा जानवर छोटे जानवर को खा जाता है तो ताक़तवर इन्सान कमज़ोर को फ़ना के घाट क्यों न उतार दे। ये ताक़त की बुनियाद पर उसका हक़ है। इस फ़लसफ़े की बुनियाद पर तो ज़ुल्म, ज़ुल्म नहीं रहता और अद्ल का कोई मतलब नहीं होता। अब अगर इसके बावदजूद इन्साफ और अद्ल की आवाज़ें ज़हनों से बलन्द होती हुई नज़र आती हैं तो मानना चाहिए कि सिर्फ़ उन्हीं दीनी रहनुमाओं की तालीम का असर है जो समझ में न आने पर इन्सानी दिमाग़ में छा गया है। दुनिया लाख पलटे खाये। आसमान और ज़मीन के दरमियान बेशुमार बदलाव होते रहें मगर हक़ न बदलेगा, हक़ न बदलेगा तो मक़ामे शब्बीरी न बदलेगा।

हक़ की जितनी निशानियाँ हैं वह कभी वक़्त के साथ नहीं बदलतीं। अली इब्ने अबी तालिब[अ०] का तक़वा और दुनिया को छोड़ना 25 साल की ख़ाना नशीनी के ज़माने में ऐसे समझा जा सकता था कि यह बेबसी का नतीजा है मगर जब आपको जमहूरी तौर पर भी इस्लामी ख़लीफ़ा मान लिया गया और ज़ाहिरी हुकूमत का तख़्त भी आपके क़दमों में आ गया उस वक़्त भी दुनिया ने देखा वही पेवन्द वाली क़बा है, वही जौ का भूसी मिला हुआ आटा आपका खाना है, जो बदलाव हुआ था वह आम लोगों में था कि वह पहले आपको ख़लीफ़ा नहीं मानते थे और अब मानने लगे थे मगर आप में ज़र्रा बराबर भी बदलाव न हुआ था।

मामून रशीद ने इमाम रिज़ा[अ०] को बनी अब्बास की हुकूमत का वलीअहद क्यों बनाया था? सिर्फ़ इस ख़याल की बुनियाद पर क्योंकि इन शख़्सियतों का तक़्वे और दुनिया से अलग होने की ख़ूबियों की वजह से मख़लूक़ पर असर था तो मामून ने अपनी नीच सोच की वजह से दुनिया को यह तजरबा कराना चाहा था कि देखो ये भी जब दुनिया में पड़ जायें तो तमाम तक़वा और सागदी ख़त्म हो जाए मगर इस तजरबे का नतीजा उलटा हुआ यानी दुनिया ने आँखों से ये देखा कि यह हुकूमत के सबसे बड़े रुक्न होने के बाद भी अपने मकान पर चटाई ही पर बैठते थे। इनका खाना और कपड़े वही है जो पहले था। इसकी वजह से उनकी रूहानियत का दिलों पर और ज़्यादा असर बढ़ने लगा। इसकी काट थी जो फिर बाद में हज़रत को ज़हर देकर की गई। मालूम हुआ कि यह अबदी हक़ीक़त के वह अमली नमूने हैं जिनमें वक़्त के साथ बदलाव नहीं होता।

रसूलुल्लाह[स०] के किरदार की ख़ास ख़ूबी जो दुनिया में नज़र आती थी क्या थी? सच्चाई और अमानतदारी। आपका लक़ब ही सादिक़ और अमीन हो गया था। 40 साल तक इन ख़ूबियों की बुनियाद पर वह हरदिल अज़ीज़ी रही कि पूरी क़ौम आपके लिए आँखें बिछाती थी मगर जब हक़ के पैग़ाम की आवाज़ बलन्द की कि ख़ुदा को एक मानो, बुतों की पूजा छोड़ दो तो पूरी क़ौम दुश्मन हो गई मगर मुश्रिकों की अमानतें आप[स०]

के पास हिजरत की रात तक थीं यहाँ तक कि जब सब एक हो गये कि रात को आपकी ज़िन्दगी का ख़ात्मा कर दें तब भी यह ख़याल नहीं हुआ कि पहले अमानतें वापस ले लो। ख़ून बहाने पर तैयार थे मगर अपनी अमानतों की हिफ़ाज़त का यक़ीन था और आपने उनकी अमानतों की हिफ़ाज़त के लिए यहाँ तक किया कि अपनी गोद के पाले और अपनी जान से ज़्यादा अज़ीज़ भाई को ख़तरे में डाल दिया मगर कह दिया कि ऐ अली! जब तक मुश्रिकों की अमानतें उनको वापस न कर देना मक्का न छोड़ना।

मालूम होता है कि यह वह हस्तियाँ हैं जिनमें बदलाव नहीं होता। दोस्त हो या दुश्मन हर हाल में अमानतें हैं और उनकी हिफ़ाज़त ज़रूरी है।

यही ख़ूबियों की बलन्दी की वह मन्ज़िल होती है जहाँ दोस्त और दुश्मन सबको एक ही तरह सर झुकाना पड़ता है। हुसैन[अ०] ऐसी ही ख़ूबियों वाले थे चुनानचे एक बार जब आपने अमीरे शाम मुआविया को एहतेजाजी ख़त लिखा और उस ख़त को पढ़ कर उन्हें बुरा लगा तो दरबारियों में से किसी ख़ुशामदी ने कह दिया कि आप भी हुसैन[अ०] को ऐसा ख़त लिख दीजिये जो उनकी नज़र में ख़ुद उनको नीचा कर दे तो अमीरे शाम ने कहा कि तुमने कुछ सही मश्वरा नहीं दिया इसलिए कि जो कुछ मैं उन्हें लिखूँगा वह अगर ग़लत है तो उसके लिखने पर मैं ख़ुद ही नीचा हूँगा और अगर सही लिखना चाहूँ, तो बुराइयाँ पाऊँ कहाँ से, जो उनके बारे में उनको लिखूँ।

यह हक़ीक़त का मक़ाम है जो न बदलने के साथ-साथ यह भी है कि इज़ाफ़ी नहीं है। इज़ाफ़ी का मतलब यह है कि जैसे किसी अज़ीज़ की निस्बत इन्सान बड़ा एहसान करने वाला है मगर ग़ैर की निस्बत वह एहसान नहीं है तो वह अच्छाई उसके हिसाब से है मगर इसके लेहाज़ से नहीं इसके ख़िलाफ़ वह अच्छाई जो ग़ैर इज़ाफ़ी हो यह है कि हर एक की बनिस्बत और हर एक के सामने वह क़ायम रहे।

इसी का नतीजा था कि जब यज़ीद ने बैअत के लिए वलीद बिन उक़बा के पास ख़त लिखा तो अगरचे वलीद ख़ुद भी बनी उमैय्या में से बल्कि आले अबूसुफ़यान में से था यानी यज़ीद का चचाज़ाद भाई था और उसकी तरफ़ से मदीने का हाकिम था मगर उसने भी हुसैन[अ०] से बैअत के मुतालबे को हक़ नहीं समझा और जब मरवान ने मश्वरा दिया कि बैअत न करें तो अभी सर काट दो तो वह इस मश्वरे पर अमल करने से मजबूर रहा और जब मरवान ने बुरा-भला कहा कि तुमने मेरा कहा न माना अब हुसैन[अ०] पर पकड़ पाना मुश्किल है तो वलीद ने यह जुमले कसे जो तबरी में लिखे हैं कि "मैं अमल कैसे करता तुमने तो मुझे ऐसी राय दी जिस पर मेरे दीन की बर्बादी है।" इसके बाद वह कहता है कि "ख़ुदा की क़सम जो हुसैन[अ०] के क़त्ल के जुर्म में गिरफ़्तार होगा उसकी भलाइयों का पल्ला क़यामत के दिन बहुत ही हल्का होगा।

इसी तरह नोमान बिन बशीर कूफ़े का हाकिम, इमाम हुसैन[अ०] के भेजे हुए मुस्लिम इब्ने अक़ील के मुक़ाबले में यज़ीद की चाहत को पूरा करने से क़ासिर रहा।

यह नतीजा था उसी हक़्क़ानियत का जो हुसैन[अ०] में उनकी मुख़ालिफ़ जमाअत के समझदार लोगों को भी महसूस होती थी। ख़ुद उमरे साद ने जो कर्बला में इमाम हुसैन[अ०] के मुक़ाबले में फ़ौज का अफ़सर बनाकर भेजा गया था साफ़-साफ़ इक़रार किया कि इमाम हुसैन[अ०] का तरीक़ा अम्न और सुलह की बुनियाद पर है और यह कि यज़ीद से बैअत की उम्मीद आपसे बेकार है।

यह "मक़ामे शब्बीरी" वही साबित क़दमी है जिसकी मिसालें इब्राहीम[अ०], मूसा[अ०], ईसा[अ०] सब ही के यहाँ नज़र आयीं यह और बात है कि इनके मुक़ाबले में मुश्किलें और मुसीबतें इतनी नहीं आयीं जितनी हुसैन[अ०] के सामने आ गयीं इसलिए हुसैन[अ०] का रास्ता सबसे बलन्द नज़र आता है।

हक़ पर डटने का नाम अगर "ज़िद" है तो जितने नबी थे सब बहुत ही ज़िद्दी थे। उन नबियों का क्या बयान ख़ुद दुनिया बनाने वाले से बढ़कर ज़िद्दी कौन हो सकता है कि जो नबी आता है क़त्ल हो जाता है, जो रसूल भेजा जाता है उसको झुठला दिया जाता है और तरह-तरह से तकलीफ़ें पहुँचायी जाती हैं मगर वह

था कि नबी भेजता ही जाता है और दीन का रास्ता बताने वालों का सिलसिला बराबर क़ायम रखा और एलान कर दिया कि तुम अल्लाह के तरीक़े में तबदीली और इन्क़ेलाब कभी न पाओगे।

बातिल अपने मुक़ाबले में हक़ को दबाने की तरह-तरह से कोशिश किया करता है। इसका भी मक़सद एक है यानी हक़ को दबाने की कोशिश करना जिसके कमाल की निशानी शायर ने "कूफ़ी और शामी" के अलफ़ाज़ में अदा किया है। यह "कूफ़ी और शामी" नाम है बातिल वालों का। इनके अन्दाज़ हक़ को मिटाने की कोशिश में बदलते रहते हैं। नमरूद की आग, फ़िरऔन के मज़ालिम, यह्या का सर काटा जाना, ज़करिया को आरे से चीर डालना, जरजीस को खौलते हुए तेल के कढ़ाव में डाल कर उबालना, फिर हज़रत ख़ातमुल अम्बिया^{स०} को तरह-तरह की तकलीफ़ें पहुँचाना, दूसरे दीनी रहनुमाओं के मुँह के सामने ज़हर के प्याले और कभी गर्दनों पर खिंची हुई तलवारें। यह सब वह कूफ़ी और शामी अन्दाज़ थे जो शब्बीरी मक़सद के सामने आते हैं।

हक़ीक़त बदली नहीं जा सकती मगर बातिल अपनी बात पर टिका नहीं रह सकता क्योंकि हक़ का इक़रार ज़मीर के दबाव से बातिल वालों को अकसर करना ही होता है।

रसूल[स०] की अमानतदारी का अमली इज़्हार मुश्रिकीन ने दुश्मनी के बाद भी अपनी अमानतें हिजरत की रात तक रसूल[स०] के पास रखवा कर किया। यह बातिल की तरफ़ से हक़ की ताक़त का इक़रार था।

हुसैन[अ०] के हक़ पर होने का भी बातिल वालों को यक़ीन था। वलीद कूफ़ी और शामी हुकूमत का नुमाइन्दा था मगर आपने देखा उसने इक़रार किया कि जो हुसैन[अ०] को क़त्ल करेगा वह क़यामत के दिन नाकाम और नामुराद होगा।

इब्ने साद भी उसी ताक़त का सरदार था मगर उसे हक़ से असर लेते हुए बार-बार अपना मरकज़ छोड़ना पड़ता था। शामी फ़ौज का हुसैनी जमाअत की चन्द लोगों के सामने भागना क्या था? अपने मरकज़ से बार-बार घबराना ही था और फिर उमवी हुकूमत के मुक़ाबले में जमहूर का ग़ुस्सा क्या था? हालांकि देखिये तो जमहूर सब ही कूफ़ी और शामी बन चुके थे मगर उन पर यह असर भी कमज़ोर था। इसलिए उनमें से बहुत से लोगों में मुस्तक़िल बदलाव हो गया।

हुसैन[अ०] की जंग ही यही थी। वह बातिल की सोंच को हराने के लिए आये थे चुनानचे अपने साथ ऐसे ही सामान लाये थे जो इन्सानी ज़हन को जगा सकें।

हुसैन[अ०] की आँखों के सामने उनकी जीत के आसार नज़र आ रहे थे। हुर का मुख़ालिफ़ फ़ौज से इधर आ जाना उनकी जीत का नाक़ाबिले इन्कार सुबूत था।

और फिर जो कूफ़ी और शामी जंग को दुनिया की चाहत की वजह से बिल्कुल न छोड़ सके उनके भी हालात से उनका घबराना नज़र आ रहा था।

हुसैन[अ०] के क़त्ल के वक़्त कई ज़ालिमों का तलवारें फेंक-फेंक कर भागना क्या था? हुसैन[अ०] की शहादत के बाद लूट के वक़्त किसी शहज़ादी के पैरों से पाज़ेब उतारना मगर उसके साथ रोते जाना क्या था?

सबसे बड़ा ज़िम्मेदार यज़ीद बदला कि नहीं? जंग आमने-सामने काहे की थी? बैअत की चाहत ही तो थी और हुसैन[अ०] से बैअत की चाहत एक शख़्स की तो न थी बल्कि रसूल[स०] के ख़ानदान के नुमाइन्दे की हैसियत से थी। मगर यही हैसियत हुसैन[अ०] के बाद ज़ैनुलआबिदीन[अ०] को हासिल हो गई थी और वह यज़ीद की बातिल ताक़त के घेरे में उसके दरबार के अन्दर मौजूद थे। मगर यज़ीद को अब इतनी हिम्मत न थी कि वह सैय्यदे सज्जाद[अ०] से बैअत का मुतालबा करता बल्कि हुसैन[अ०] के किसी एक बच्चे से यह न कह सका कि बैअत कर लो।

हुसैन[अ०] और उनके बाद उनकी औलाद अपने मक़सद से ज़र्रा भर कभी नहीं हटी और यज़ीद ख़ुद ही अपनी ज़िद से मजबूर होकर बैठ गया। सच कहा है "इक़बाल" नेः

हक़ीक़ते अबदी है मक़ामे शब्बीरी
बदलते रहते हैं अन्दाज़े कूफ़ी व शामी

